International Journal of Applied Research 2020; 6(4): 51-54

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2020; 6(4): 51-54
www.allresearchjournal.com
Received: 26-02-2020
Accepted: 28-03-2020

डॉ० किरण कुमारी शर्मा
तदर्थ व्याख्याता, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, गया बिहार, भारत

Correspondence Author:
डॉ० किरण कुमारी शर्मा
तदर्थ व्याख्याता, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, गया बिहार, भारत

कबीर का दर्शन

डॉ० किरण कुमारी शर्मा

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के परमसत्य समदर्शी, समन्वय, सचेतक संत 'कबीर हिन्दुओं के लिए वैष्णवभक्त, मुसलमानों के लिए पीर, सिक्खों के भगत, आधुनिक राष्ट्रवादियों के 'हिन्दु–मुस्लिम–ऐक्य–विधायक, नववेदान्तियों के विश्व धर्म या मानव धर्म–प्रवर्त्तक, प्रगतिशील तत्त्वों की दृष्टि में समाजसुधारक, जातिगत श्रेष्ठता के विरोधी, कमजोर वर्ग के पक्षधर, क्रांतिकारी और समता बंधुत्वभावना, न्याय तथा एकता के प्रतिपादक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। पाश्चात्य आलोचकों ने इन्हें 'भारतीय लूथर' माना है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि कबीर के दर्शन में भारतीय आत्मा का निवास है। कबीर के संदर्भ में डॉ० रामकुमार वर्मा कहते है– "कबीर के पहले भी हिन्दूसमाज में कितने ही धार्मिक सुधारक हुए थे, पर उनमें अप्रिय सत्य कहने का साहस नहीं था। कबीर की शिक्षा में हमें हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की सीमा तोड़ने का यत्न दृष्टिगत होता है। यही उनकी आंतरिक अभिलाषा थी।" [1] मैनेजर पांडेय कहते है– "कबीर केवल अपने युग की चिंता के कवि नहीं है, वे भारत के अतीत की तेजस्वी ज्ञानधार और भविष्य की संभावनाओं के भी कवि हैं।" [2] जॉर्ज ग्रियर्सन ने कहा कि कबीर के सिद्धांत सेंट जॉन की कविताओं से मेल खाते हैं– Kabir's doctrine of the word (Sabda) is a remarkable copy of the pening verses of st. John's Gospel Modern Hinduism and its Debt to the Nestorians. (JRAS, 1907, P-311). पाश्चात्य लेखक बेस्टकोट के अनुसार– It is not improbable that this doctrine, as set forth in the literature if the Kabir, panth, has been influenced lay the writings of St. John. (Kabir and Kabir Panth. P-50).

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ०–264
2. आलोचना प्रधान संपादक, डॉ० नामवर सिंह, पृ०–28

पश्चिम में कबीर पर जितना कार्य हुआ, संभवतः हिंदी के किसी अन्य कवि पर उतने ग्रंथ नहीं लिखे गए। [3] तात्पर्य यह कि 'कबीर के दर्शन' पूरब से पश्चिम तक अर्थात् उदयाचल से अस्ताचल तक देदीप्यावान रहा। 'मसी–कागद' का स्पर्श नहीं करने वाले कबीर ने कितनों को प्रकांड विद्वान बना दिया, यही उनका जीवन दर्शन है। [18] वीं शताब्दी से ही कबीर की वाणी यूरोप में गूंजने लगी थी। सन् 1758 में सर्वप्रथम एक इटैलियन साधु पाद्रे मार्को डेलाटोम्बा ने कबीर के 'ज्ञान सागर' अथवा 'सतनाम कबीर' का इटैलियन भाषा में अनुवाद किया। इसके बाद डब्ल्यू प्राइस, जे० हैरेट H.N. Wilson, xklkZ n rklh] Hunter, E. Trump, fxz;lZu] Westcott, esdkfyd] Underwill, F.E.K. Briggs, fLuFk] Picott आदि पाश्चात्य विद्वानों ने कबीर की रचनाओं के संपादन, पाठानुसंधान, अनुवाद, समीक्षा आदि के रूप में जो कार्य किए, वे उनके व्यक्तित्व की महनीयता के ज्वलंत प्रमाण हैं। [4]

कबीर मुख्यतः साधक थे, किन्तु उन्होंने अपने जो दार्शनिक मत व्यक्त किया है, उन्हें अधोलिखित खंडों में बाँटकर समझा जा सकता है–

1. **परमतत्व :** कबीर का मानना था कि परमतत्व को द्वैत और अद्वैत के कठघरे में नहीं बंद किया जा सकता है–

   एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गार।
   है जैसा वैसा रहै, कहै कबीर विचार।।

महायान दर्शन में परमतत्व को 'तथता' कहा गया है जिसका अर्थ है– "जैसा है वैसा हैं।" परमतत्व काल और देश की सीमा से परे है। कबीर का 'सत्यपुरुष' 'निर्गुण शिव' से मिलता है और उनका निरंजना पुरुष' 'सगुण शिव'

3. वही, पृ०–2
4. कबीर वाणी पियूष : डॉ० जयदेव सिंह तथा डॉ० वासुदेव सिंह, वि०वि० प्रकाषन वाराणसी, पृ०–2

से मिलता है। परमतत्व अथवा निरंजन पुरुष ने माया अथवा आद्याशक्ति को उत्पन्न कर उसके संयोग से ब्रह्मा, विष्णु और शिव को उत्पन्न किया और फिर सृष्टि की प्रक्रिया आरंभ हुई।

2. कबीर के राम : परमार्थ के लिए, ईश्वर के लिए, परम चैतन्य के लिए, परमतत्त्व के लिए कबीर ने 'राम' शब्द का प्रयोग किया जो निर्गुण है, निराकार है। उनका 'राम' घट–घट वासी है, वह विश्वोतीर्ण है पर विश्वमयभी है–

कस्तुरी कुंडली वसै, मृग ढूंढ़े वन माहिं।
वैसे घट–घट राम है, दुनिया देखत नाहिं।।

कबीर का 'राम' दशरथसुत राम' नहीं है। वह कण–कण में व्याप्त है। वह असीम है, प्रत्येक शरीर में रमने वाला है। वह अलख है फिर भी भक्तों से सम्पर्क बनाये रखता है। वह निरंकार है फिर भी भक्त उससे 'एकमेक' होकर मिल सकता है। उसकी उपासना की जा सकती है।

संतो, धोखा कासूँ कहिये।
गुन में निरगुन, निरगुन में गुन, वाटि छाँड़ि क्यूं रहिये।
अजर–अमर कहै सब कोई अलख न कथना जाइ।
नाति–स्वरूप, चरण नहीं जाके, घटि–घटि रहयो समाइ।
प्यंड–ब्रह्माण्ड कथै सब कोई, बाके आदि अरू अंत न होई।
प्रंचड–ब्रह्माण्ड छाँड़ि, जे कहिये, कहै कबीर हरि सोई।।
(कबीर ग्रंथावली, पद 180)

वह अरुप होते हुए भी प्रत्येक रुप में रम रहा है। वह भावाभाव–विनिर्मुक्त है किन्तु प्रेम द्वारा सहज ही प्राप्य है।

राम नाम हिरदै धरि, निरमोलिक हीरा।
सोभा तिहूँलोक तिमिर, जाय त्रिविध पीरा।
(ना०प्र०सभा, वाराणसी) बाबूश्यामसुन्दर दास, (क०ग्र० पद–321) पृ०–147

कबीर अवतारवाद का विरोध करते हैं–

दशरथसुत ति हूँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।
र र र र

लोक तुम्हे जो कहत है नन्द कौ नंदन, नन्द कहौं धूँ काकौ रे।
धरनि अकास दो उन्हीं होते, तब यदु नन्द कहाँ थौ रे।
(क०ग्र०–पद–48, पृ०–81)

तथापि वे राम को भजने की सलाह देते हैं–

माता पिता लोक सुत वनिता, अंत न चले संगात।
कहै कबीर राम भजि बौरे, जनम अकारथ जात।।
(क० ग्र०–पद–400 पृ०–167)

इस प्रकार कबीर के लिए 'आत्मा' और 'राम' एक हैं–

"आतम राम अबर नहीं दूजा।"

3. माया : कबीर ने 'माया' को 'आद्याशक्ति' माना है जिसको 'परमतत्व राम' ने बनाया है। वह 'राम' की शक्ति है जिसके द्वारा प्रभु सृष्टि करते हैं परंतु यही माया सबका शिकार करती है, सबको ठगती है–

'माया महाठगिनी, हम जानी।'

कबीर कहते हैं–

"तू माया रघुनाथ की खेलण चली अहेड़ै।।"
(क०ग्र०पद 187)

कबीर की माया 'अविद्या माया' है, जो सत्य को आवृतकर एकत्व को छिपाती है और नानात्व की प्रतीति कराती है। वह जीवों को मोहित कर विषयों में आबद्ध कराती है, ऐन्द्रिय सुखों के लिए तृष्णा को जागृत करती है तथा अनात्म को आत्मवत् उद्भासित करती है। कबीर त्रिगुणात्मिका प्रकृति को ही माया मानते हैं, जिससे सृष्टि होती है–

'राजस तामस सातिग तीन्यूं, ये सब तेरी माया।'
(क०ग्र० पद सं०–184)

माया सर्व व्यापिनी है, सम्पूर्ण चराचर को अपने वश में कर रखा है। इसे सिर्फ परमतत्त्व ही जान सकता है या उनका भक्त–

'बाजी को बाजीगर जानै, कै बाजीगर का चेरा।'
(क०ग्र० पद–238)

यह सर्व व्यापिनी है, जिसके प्रभाव से कोई बच नहीं पाया–

"कबीर माया मोहिनी, सब जग घाल्या घाणि।"
(क०ग्र० पृ०–338)

माया मन को विकृत कर देती है। शरीर से मुक्त हो जाने पर भी माया से मुक्ति असंभव है–

"माया मुई न मन मुआ, मरि–मरि गया शरीर।
आसा तृष्णा ना मुई, यों कहि गया कबीर।।"
(क०ग्रं० पद–33)

माया से त्राण के लिए कबीर ने कहा कि राम की अनन्य भक्ति से प्रपत्ति से तथा प्रभु के चरणों में आत्मसमर्पण से, हृदय में आत्मज्योति का उन्मेष होता है– जिससे माया का अंधकार सदा के लिए तिरोहित हो जाता है–

"घट की ज्योति जगत प्रकास्या, माया सोक, बुझाना।"
(क०ग्र०–पद–157)

4. सहजशून्य : कबीर के दार्शनिक चिंतन और साधना में परमतत्व 'सहज' केवल ज्ञान का विषय नहीं है, वह प्रेम का विषय भी हैं।

"सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै विषया तजि, सहज कही जै सोइ।।"
(क०ग्र० पृ०–41–42)

'सहज–सहज' तो सभी रहते है, परन्तु उसे जानना सहज नहीं है। जो सहजता से भी विषयों का त्याग कर दे, विषयों से अनासक्त हो पाँचों इन्द्रियों को जीत ले, पुत्रमोह, पत्नी मोह, वित्त मोह, तथा माया मोह से विरत हो, वही 'सहजावस्था' को प्राप्त कर सकते है, वही 'राम' से एकमेक' हो सकते हैं तथा उन्हें ही प्रभु का साक्षात्कार हो सकता है। कबीर का सहज प्रेम स्वरूप है और जीव के प्रेम का विषय है।

जब अजपा जाप और नादानुसंधान द्वारा चित्त का विकल्प समाप्त हो जाता है, तब 'सहज' का साक्षात्कार होता है तथा चित्त का

'सहज' में लय हो जाता है। फिर जीव अपने भी तर 'शून्य' का अनुभव करता है। कबीर ने इसे ही 'सहज सुन्न' कहा है–

"अजपा जपत सुनि अभि अंतर, यहु तत जानै सोइ।"
(क०ग्र० पृ०–159)

जिसका ध्यान 'सहज शून्य' में लगता है वही परम योगी है–

"सहजसुनि मैं जिनि रस चाख्या, सतगुरु थैं सुधि पाई।"
(क०ग्र० पृ०–111)

तांत्रिक सिद्धों के समान कबीर ने भी 'सहजशून्य' के अनुभव को सुख रस, महारस इत्यादि कहा है।

5. शब्द : कबीर के अनुसार दीक्षा के समय गुरु जो 'राम', 'ओइम्' इत्यादि मंत्र शिष्य को देता है, वही 'शब्द' है। इसी 'शब्द' के माध्यम से गुरु एक चैतन्य शक्ति शिष्य में समाविष्ट कर देता है, जो शिष्य के अंदर 'दैवशक्ति स्फुरण' उत्पन्न करता है और 'सहज' से साक्षात्कार होने हेतु प्रेरित करता है।

6. कबीर की साधना : कबीर की साधना में उपनिषदों के ज्ञान, नादानुसंधान, योग और अनन्य शक्ति का सुंदर समन्वय है। उनकी साधना में प्रेम की प्रधानता है। कबीर ने इस मिथक को तोड़ा कि ज्ञान सिर्फ स्वाध्याय, तर्क, वेदान्त के श्रवण, मनन और चिन्तन से प्राप्त होता है। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि ज्ञान या अद्वैत की अनुभूति योग और प्रेम से भी संभव है।

तूं–तूं करता तूं भया, मुझमें रही न तूँ।
वारी तेरी प्रेम पर, जित देखों तित तूं।।

7. योग : परमपद की प्राप्ति में योग भी एक साधना है। वे हठयोग, कष्टसाध्य आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध इत्यादि के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने कभी सिद्धि आदि के प्रदर्शन और ब्राह्माण्डंबरों का समर्थन नहीं किया–

अवधू जोगी जज थैं न्यारा।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा।
वसै गगन में दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा।
चढ़ि अकास आसन नहीं छाँडै, मी वै महारस मीठा।।
वरगह कंधा माहैं जोगी, दिल में दरपन जो वै।
सहस इकीस छः सै, धागा, निहचल नाकै पोवै।।
ब्रह्म अग्नि में काया जारै त्रिकुटी संगम जागै।
कहै कबीर सोई जोगेश्वर सहज सुंनि त्यौ लागै।।
(क०ग्र० पद–69)

कबीर के योग को समझने हेतु अधोलिखित पदों को समझना आवश्यक है–

(क) सुरति निरति– 'सुरति' शब्द का अर्थ है– किसी पदार्थ में इतने रस, इतने आनंद का अनुभव करना कि चित्त की चंचलता, चित्त के क्षोभ का उपरम और उपशम हो जाय। [5] 'निरति' शब्द का अर्थ है– पूर्ण रूप से रति। [6] 'सुरति–निरति' का अर्थ हुआ–'सुतराम रतिः' और 'नितराम रतिः' अर्थात् अच्छी तरह से रति और पूर्ण रूप से रति। 'निरति' 'सुरति' की चरमावस्था है, सुरति' की परिपूर्णता है। 'निरति' निरालम्ब की स्थिति है, सहज स्थिति है। गोरखवानी में 'सुरति' को 'साघन' और निरति को 'सिद्धि' कहा गया है। [7]

सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार।
(क० ग्र० साखी 5, 22)

(ख) मन–उनमन– कबीर का योग 'मन' को निश्चल बनाकर उसका उन्मन (दिव्य चेतना) में लय कर देना है। कबीर के अनुसार 'उनमन' का अर्थ है– उन + मन अर्थात् 'राम' या 'सहज' का मन। मन चंचल होता है वह कई प्रकार के 'रव' में लीन रहता है। इस मन को सांसारिकता से विमुख कर 'सहज' के 'मन' से जोड़ देना ही योग है।

बाहर खोजत जनम गँवाय।
उनमनी ध्यान घट भीतर पाया।।
(क० ग्र० पद–17)

मन लागा उनमन सौ, उनमन मनहिं विलंग।
लूँण विलंगा पांणिया, प्राणीं लूंण विलंग।।
(क०ग्र० साखी–5, 16)

3. कबीर वाणी पियूष पृ०–40
4. वही, पृ०–40
5. वही, पृ०–40

(ग) अजपाजप– कबीर माला लेकर 'राम–नाम' जपने में विश्वास नहीं करते हैं बल्कि बिना उच्चारण किये श्वास–प्रश्वास के साथ 'राम' का स्मरण करना ही 'अजपाजप' है। अजपा के साथ जप का भाव है– सुमिरन। 'रामनाम' कबीर का बीज मंत्र है। इसके अजपाजप (सुमिरन) से कुंडलिनी का उत्थापन होता है और वह सहस्त्रार में चढ़ती है। इसी योग से कुंडलिनी जागृत होती है।

(घ) नादानुसंधान– आँख, नाक, कान, मुँह आदि को अँगुलियों से बंद कराने पर भीतर एक नाद सुनाई देता है, जिसे अनाहत नाद कहते हैं। कबीर ने इसे अनहद नाद कहा है। कबीर की मान्यता थी कि हठयोग, मुद्रा, बंध और क्लिष्ट प्राणायामों के बिना, जब अजपाजय से ही प्राण–अपान अवरूद्ध हो जाते हैं तथा कुंडलिनी सुषुम्ना में प्रविष्ट होती है, तब 'अनहद नाद' सुनाई देता है। सुषुम्ना के पथ से लेकर सहस्त्रार तक यह नाद झंकृत होता है। ज्यों–ज्यों उस नाद में 'सुरति' समाहित होती जाती है, त्यों–त्यों नाद सूक्ष्म होता जाता है। एक समय ऐसा आता है जब यह नाद समाप्त हो जाता है और केवल निःशब्द शेष रह जाता है। यही निःशब्द परब्रह्म है। अब सुरति निरति में समा जाती है। यही परमात्मा का साक्षात्कार 'निरति' की अवस्था है। यही साधना की परिपूर्णता है।

(ड़) सहजसमाधि – परमपद चैतन्य की एक सहज अवस्था है। जब सुरति शब्द योग द्वारा सहजावस्था प्राप्त होती है तो मन विषयों की ओर आसक्त नहीं होता। मन ब्रह्म के रस में सदा डूबा रहता है तथा चित्त सदा के लिए उससे एकाकार हो जाता है। यही 'सहज समाधि' है।
सहज, उन्मन, तुरीय, रामरस सब एक ही स्थिति के द्योतक हैं–

"उनमन मनुवा सुन्नि समाना, दुविधा दुर्मति भागी।
कहे कबीर अनुभौ इक देख्या, राम नाम लिब लागी।"
(क०ग्रं० पृ०–291 पद–91)

कबीर का योग 'सहजयोग' है क्योंकि प्रभु में अनन्य प्रेम से, उनके निरंतर 'सुमिरन' से अजपाजप से सहज ही में 'सहज' पद की प्राप्ति हो जाती है।
इस प्रकार कबीर ने भक्ति का एक ऐसा सहज मार्ग प्रस्तुत किया जो गार्हस्थ जीवन में संभव है। आज जबकि सारा विश्व धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर, सम्प्रदाय के नाम पर कई छोटी–छोटी कट्टर इकाइयों में विभाजित हो गया है, कबीर के

दर्शन की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है। विश्वशांति के लिए एक और कबीर की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. कबीर ग्रंथावलीः सं०–बाबू श्याम सुन्दर दास नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, दशवाँ संस्करण सं०–2025
2. कबीर ग्रंथावली सं०– पारसनाथ तिवारी हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण अक्टूबर 1961
3. कबीर वाणी पीयूष, डॉ० जयदेव सिंह एवं डॉ० वासुदेव सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी चतुर्थ संस्करण, 1988
4. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास आ०रामचन्द्र शुक्ल
6. आलोचना प्र० सम्पादक, डॉ० नामवर सिंह राजकमल प्रकाशन (प्रा०) लि० नई दिल्ली।
7. कबीर साहित्य की परख–परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर रोड, इलाहाबाद।
8. कबीर ग्रंथावली, सं० राम किशोर शर्मा।